SHODHPATRA: INTERNATIONAL JOURNAL OF SCIENCE AND HUMANITIES
E-ISSN: 3048-6041 | www.shodhpatra.org | Volume 1, Issue 8, August 2024

सांख्यदर्शन के गुणों की वैज्ञानिक व्याख्या

Dr. Rishika Verma
Assistant Professor
Department of Philosophy
Hemvati Nandan Bahuguna Garhwal University,
Srinagar, Garhwal, Uttarakhand
Email id : rishika.verma75@gmail.com
Mobile no. 9335663975

शोध सारांशः–

सांख्यशास्त्र के अनुसार शुक्लवर्णधर्मा प्रकाश सत्त्वगुण है, कृष्णवर्णधर्मा विदग्ध द्रव्य तमोगुण। विज्ञान का फोटोन और न्यूट्रोन पदार्थ उपर्युक्त सत्त्व और तम इन दोनों पदार्थों से अपना बहुत कुछ साम्य रखता है। तमोगुण की द्रव्यराशि का स्वरूप अचल और जड़ है। रजोगुण के प्रवर्तक वेग से संयुक्त होने पर वह तन्मात्र रूप से सक्रिय हो उठती है। रजोगुण ऊर्जाधर्मी सक्रियता का प्रवत्क बलवेग है। प्रलयकाल में यह क्रमशः अपनी उत्तरोत्तर अवस्थाओं में निष्क्रियता की ओर बढ़ता हुआ–अन्त में बलमात्रक के रूप में अचल हो जाता है। वही सृष्टिकाल में ऊर्जा के रूप में सक्रिय होता हुआ सत्त्वगुण और तमोगुण को एकाकार कर देता है। इन गुणत्रय के सम्मिलित विक्षोभ से ही इस मनौभौतिक विश्व का विस्फोट होता है। इससे पूर्व की द्रव्यावस्था के दो स्तर और हैं– (1) महतत्त्व और (2) अहंकार। प्रकृति का ही महतत्त्व के रूप में प्रथम परिणाम है, इसका द्वितीय परिणाम अहंकार है, जो आगे चलकर इन्द्रिय, तन्मात्र और तज्जन्य पंचमहाभूतों के रूप में प्रकट होता है।

बीज शब्दः सांख्यदर्शन, प्रकृति, सत्वगुण, रजोगुण, तमगुण, विज्ञान, सृष्टि, प्रलय

प्रस्तावनाः–

विश्व का समग्र उपादान बीजरूप में अपनी कारण परम्परा के मूल में विद्यमान हैं। सनातन महासत्ता ही उसका मूलकारण है। विश्व का मूलाधार होते हुए भी स्वयं निर्मूल और निराधार है।[1] उस मूलाधार के विज्ञानमय स्वरूप को जानने के लिए ही वैदिक दर्शन के प्रस्थान का प्रवर्तन होता है– विश्व के

समस्त प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके आश्रय से जीवति रहते हैं, अन्त में प्रयाण करते हुए उसमें ही प्रविष्ट व विलीन हो जाते हैं, उसे तत्त्वतः जानने की इच्छा करो, वही ब्रह्म है।[2] वेदान्त दर्शन में समग्र सत्ता पाँच भागों में वगीकृत हुई है– (1) अस्ति, (2) भाति, (3) प्रिय, (4) रूप और (5) नाम इनमें प्रथम तीन नित्य और चेतन है, शेष दो अनित्य, जड़ और जगत् रूप।[3]

वैज्ञानिक शिरोमणि सुप्रसिद्ध गणितशास्त्री श्रीभास्कराचार्य ने परमसत्ता के उपादानभूत ब्रह्माण्डीय द्रव्यस्वरूप को उसकी समग्रता में इस प्रकार प्रस्तुत किया है।[4] इसका संक्षेप में तात्पर्य है कि आद्यतत्त्व परमब्रह्म है, जिससे सभी उपादानभूत तत्त्वों की उत्पत्ति होती है, यही विश्व का मूलकारणस्वरूप वासुदेवतत्त्व है। जब उसमें संकल्प होता है, तब संकर्षण नामक अंश उत्पन्न होता है। इससे ही प्रकृति और पुरुष में क्षोभ उत्पन्न होता है, यह क्षोभ ही कालान्तर में महत्तत्त्व के रूप में परिणत होता है, यही सृष्टि का प्रद्युम्न तत्त्व है। यह तत्त्व ही आगे चलकर अहंकार को उत्पन्न करता है, जो अनिरुद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ यह सृष्टि–विज्ञान आचार्य ने सांख्यशास्त्र के आधार पर स्पष्ट किया है।

उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से यह सिद्ध होता है कि वेदान्त और सांख्य का मूल आधार वैदिक विचारधारा होने के कारण आरम्भ में इन दोनों को रूप समान ही था। परन्तु कालान्तर में इन दोनों की विचार दृष्टियों में भेद गया। वेदान्ती तो पूर्णतया वैदिकमतावलम्बी होने के कारण अद्वैत मत का मण्डन करता गया, परन्तु सांख्यवादी ने वैदिकपथ को छोड़कर साधारणजनहिताय वैदिक सिद्धान्तों में परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया। वेदान्त के एकात्मवाद के स्थान पर पुरुष–बहुत्ववाद और जगत् की मायिक सत्यता की जगह अनित्य सत्यता स्वीकार स्वीकार करना सांख्य के प्रमुख परिवर्तन थे।

वासुदेव पोद्दार अपनी पुस्तक कालयात्रा में सांख्य के सृष्टि–सिद्धान्त की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए नजर आते है। उनके अनुसार विश्व, चेतना, गति और गुरुत्व इन तीन तत्त्वों से बना हुआ एक विराट् रंगमंच है, प्रकृति इनका संगठित क्षेत्र। महाप्रलय में तीनों ही तत्त्व सदृश परिणाम में पहुँचकर सन्तुलित हो जाते हैं। अतः प्रलय इन तत्त्वों की सन्तुलित अवस्था का क्रम है। विश्व की महाकालयात्रा इस सन्तुलन भंग के साथ प्रारंभ होती है। प्रकृति का यह गुणक्षोभ रजोगुण के बलमात्रक को गतिशील बना देता है–फलतः तमोगुण ओर सत्त्वगुण की यह निष्क्रिय अवस्था समाप्त हो जाती है। तमोगुण सत्त्वगुण से प्रभावित होता हुआ विश्व की संरचनात्मक स्थितियों तक चला आता है। सांख्यशास्त्र में यही प्रकृति के गुणात्मक स्थिर संतुलित विश्व का सिद्धान्त है। सृष्टि के संरचनाकाल में यही तीनों तत्त्व गुणक्षोभ के द्वारा प्रकृति के महान् गुणात्मक सन्तुलन को भंग करते हुए शक्ति के

संगठित क्षेत्र का निमार्ण करते हैं। फलतः परिणामधर्मा सन्दोलनात्मक विश्व–चक्रों की आवृत्ति प्रारम्भ हो जाती है। जब तक शक्ति की गुणात्मक तन्मात्रा का प्रमातृक स्वरूप अपने धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम और अवस्थापरिणाम में गतिशील रहता है– यह विश्व तब तक अपने गुणात्मक संतुलन की शक्ति–स्पन्द–स्वरूपा संकोच–विकासात्मक गति पर पुनः–पुनः सन्दोलित होता रहता है। संकोच और विकास यही प्रकृति की छन्दोबद्ध लय है, जो अनवरत सृष्टि और प्रलय के दोलायमान विश्व–चक्रों में सनातन भाव से निरन्तर झूलती हुई, अन्त में प्रलय की गोद में पहुँचकर विश्रान्त हो जाती है।

विज्ञान ब्रह्माण्डीय द्रव्य की मौलिक अवधारणा भिन्न–भिन्न तेजस्कणिकाओं के (Particles) रूप में करता है, इनमें फोटोन (Photon) न्यूट्रिनोस (Neutrinos), इलेक्ट्रोन (Electron), मूओन (Muon) पी, मेसोन्स (Pi Mesons), न्यूट्रोन (Neutron) आदि प्रमुख हैं। आदिअण्ड के आभ्यन्तर स्वरूप पर फोटोन और न्यूट्रोन इन दो कणिकाओं का ही सर्वाधिक प्रभावी हस्तक्षेप है। ये दोनों ही अण्ड के द्रव्यमय स्वरूप के आधारभूत ढाँचे का निर्माण करते हैं। सांख्यशास्त्र की तत्त्व दृष्टि से फोटोन तत्त्व– प्रकाश शक्ति का उपलक्षक सत्त्वगुण व सत्त्वपदार्थ है, न्यूट्रोन गुरुत्वप्रधान कृष्णतत्त्व या तमस् पदार्थ है। आदिम द्रव्य के स्वरूप एवं उसकी गुरूत्वप्रधान कार्यपद्धति को सांख्यकारिका ने निम्न–प्रकार से प्रस्तुत किया है–

.....प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।

अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्चगुणाः।।[5]

सत्त्व–रज और तम इन तीनों गुणों का अपना प्रयोजन है, सत्त्वगुण प्रकाश प्रधान व प्रकाशक है, रजोगुण का प्रयोजन प्रवृत्ति एवं तमोगुण का नियमन है। प्रारम्भ में आदिमद्रव्य का स्वरूप तन्मात्ररूप शक्ति है, अतः वहाँ प्रकाश, प्रवृत्ति और नियमन इसी रूप में शक्तिा की प्रथम क्रिया उपलब्ध होती है, इसी अर्थ में गुण शब्द का वहाँ व्यवहार किया गया है– शक्तिा के गुण ही आगे चलकर विश्व के रूप में व्यक्त हो उठते हैं। प्रकृति का दूसरा नाम शक्ति भी प्राचीन दर्शन में प्रयुक्त हुआ है। शक्तिा का स्पन्द ही द्रव्यरूप में प्रस्तुत हुआ है, वही इस विश्व की द्रव्यवाची सत्ता का विधायक है। शक्ति का आद्यस्पन्द तीन गुणों से युक्त है, ये गुणप्रयोजन ही उपर्युक्त कारिका में प्रकाश–प्रवृत्ति और नियमन के अर्थ में प्रयोज्य हैं। विज्ञान आदिम द्रव्य की कल्पना जिन शक्ति स्पन्द रूप परमकणों के रूप में कर रहा है– उनके पदार्थ विधायक क्रियात्मक स्वरूप को उसने चार भागों में बाँटकर समझा है–

(1) रेस्ट इनर्जी (Rest Energy) (2) थ्रेसहोल्ड टेम्परेचर (Threshhold Temperature) (3) इफेक्टिव नम्बर ऑफ स्पेसीज (Effective Number of Species) और (4) मीन लाइफ (Mean life)।

आदिमद्रव्य के क्रियात्मक सन्दर्थ में सांख्य दर्शन का अपना सिद्धान्त भी कम महत्वपूर्ण नहीं, उसने प्रकृति के गुणक्षोभ को नवीन विश्वसंरचना के परिप्रेक्ष्य में चार भागों में बाँटकर प्रस्तुत किया है। तुलनात्मक दृष्टि से सांख्य का वैशिष्ट्य यहाँ असाधारण है। इस दर्शन के अनुसार आदिमद्रव्य का क्रिया–शक्यात्मक स्वरूप इस प्रकार है– (1) अन्योन्याभिभव वृत्ति, (2) अन्योन्याश्रय वृत्ति, (3) अन्यान्यजनन वृत्ति और (4) अन्योन्यमिथुन वृत्ति। आचार्य वाचस्पति मिश्रपाद ने अपनी टीका में वृत्ति शब्द का अर्थ क्रिया किया है, जो उपर्युक्त पदो ंके साथ अन्वित है–''वृत्तिः क्रिया, सा च प्रत्येकमभिसमबध्यते''। कारिका 12 पर सांख्यतत्वकौमुदी की व्याख्या। प्रथम अन्योन्याभिभव वृत्ति से प्रत्येक गुण अन्य दो गुणों की शक्ति का अभिभव करता हुआ, इनके विरुद्ध एक अन्य प्रतिद्वन्द्वी पदार्थ को उत्पन्न करता है। इस अभिभय क्रिया से ही नये द्रव्य पदार्थों की सृष्टि होती रहती है। सत्त्व–रज–तम– इन गुणों में से कोई एक गुण अपने धर्माधर्म निमित्तक प्रयोजन के बल द्वारा स्वकार्य जननोन्मुख होकर अपने से भिन्न दो गुणों को अभिभव कर लेता है, अर्थात् इन्हें निर्बल–सा बना देता है। गुणों के अभिभव की यह प्रक्रिया इस प्रकार है। सत्त्वगुण– रज और तम को निर्बल बनाकर प्रकाशवृत्ति को अन्य दो वृत्तियों व क्रियाओं के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी के रूप में विकसित कर लेता है। उसी प्रकार रजोगुण शेष दोनों गुणों को निर्बल बनाता हुआ वेगशुक्ति को प्रबलकर देता है, और इसी तरह तमोगुण अन्य दो गुणों का अभिभव करता हुआ द्रव्य गुरुत्व को प्रबल बना देता है। अन्यान्याश्रय वृत्ति में गुणों का आधारआधेय भाव तो नहीं होता, वह घट–भूतल या कुण्डबदर की तरह असंभव है। यहाँ जिसकी अपेक्षा से जिसकी क्रिया होती है, वही उसका आश्रय हो जाता है अर्थात् जिस क्रिया में जो सहायक व सहकारी के रूप में प्रस्तुत होता है, वह सहकारी ही वहाँ उस सहकार्य का आश्रय है। उदाहरण के लिये–सत्त्वगुण रज और तम के प्रवृत्ति एवं नियमरूप कार्य को अपने सहायक व सहकारी में रूप में स्वीकार कर अपने 'प्रकाशात्मक' कार्य के द्वारा अन्य दो गुणों का उपकारक हो जाता है। उसी प्रकार रजोगुण शेष दो गुणों के प्रकाश (a) और नियमन कार्य को (a) अपने सहकारी के रूप में स्वीकार कर अपने 'प्रवृत्ति' रूप कार्य द्वारा इन दोनों गुणों का उपकारक बन जाता है। उसी

प्रकार तमोगुण सत्त्व और रज के प्रकाश और प्रवृत्तिरूप कार्यों का सहकारी बनकर अपने नियमनरूप कार्य के द्वारा उनके स्वरूप का निर्धारण करता हुआ उनका सहायक हो जाता है।

तृतीय है, अन्योन्यजनन वृत्ति, इसके अनुसार तीन गुणों में से कोई एक गुण अन्य गुण का आश्रय लेकर कार्य को उत्पन्न करता है। यहाँ हम उदाहरण के लिए प्रलय की अवस्था को ले सकते हैं। इस समय कोई एक गुण जैसे 'सत्त्वगुण' अपनी अपेक्षा से किसी अन्य गौणगुण का आश्रय लेकर गौणगुण के समान ही 'परिणाम' से युक्त हो जाता है। वह वहाँ अपने स्थूल परिणाम से युक्त नहीं होता। कहने का तात्पर्य है कि प्रकाश अपने परिणाम को संकुचितकर रज और तम के प्रवृत्ति एवं नियमन व्यापार को संकोचयुक्त बना देता है। उसी प्रकार 'रजोगुण' अपने प्रवृत्ति परिणाम को संकुचित करता हुआ सत्त्व और तमोगुण के प्रकाश, नियमन परिणाम को और भी संकुचित व संकोधर्मा बना देता है। उसी तरह तमोगुण भी अपने नियमन परिणाम द्वारा शेष दोंनों गुणों के प्रकाश, प्रवृत्ति परिणाम को और भी संकोचधर्मा बना देता है। सांख्य के इस सिद्धान्त द्वारा ब्लैक–होल के स्वरूप को भली–भाँती समझा जा सकता है– वहाँ संकोच का महासाम्राज्य क्यों और किस प्रकार है, क्यों वहाँ सत्त्वधर्मा प्रकाश तिरोहित हो गया है? क्यों विश्व द्रव्य वहाँ बीजरूप से परमसंकुचित हो उठा है? क्यों वहाँ का वह अप्रकाशित ब्रह्माण्ड घन से घनतम होता हुआ परमगुरुत्वधर्मा हो गया है? यहाँ जनन पद से नवीन वस्तु का प्रादुर्भाव संकेतित नहीं, तद्रूपेण परिणमन ही वहाँ जनन शब्द का अर्थ है। सांख्यदर्शन सत्कार्यवादी है, अतः उसे उत्पत्तिपरक अर्थ सिद्धान्तपक्ष में ग्राह्य नहीं, वहाँ परिणामवाद है। वैसे स्थूल दृष्टि से अन्योन्याश्रय वृत्ति और अन्योन्यजनन वृत्ति में एक जैसा ही अर्थ प्रतीत होता है, क्योंकि प्रथम में बताया गया है कि 'अन्यतम गुण' कोई अन्यतम किसी एक गुण का आश्रय लेकर प्रवृत्त होता है, एवं अन्योन्यजनन वृत्ति से भी वही कहा जा सकता है कि गुण अन्यतमगुण की अपेक्षा अनुरूप परिणत होता है। अतः यहाँ पुनरूक्ति का आभास–सा हो जाता है। पर तत्त्वतः यह स्थिति नहीं, अन्योन्याश्रय वृत्ति से 'विसदृश परिणाम'– असाधारण प्रकाशादिरूप कार्यों में अन्यतमगुण, अन्यतमगुण का आश्रय करता है, पर अन्योन्य जनन वृत्ति से तो 'सदृश परिणाम' में अन्यतम–गुण अन्यतमगुण की अपेक्षा करता है। अतः इन दोनों वृत्तियों का प्रतिपाद्य भिन्न–भिन्न है। चतुर्थ अन्योन्यमिथुन वृत्ति से तात्पर्य है– ये तीनों गुण परस्पर सहयोग करते हैं, इनका साहचर्य नित्य है। यही इनका अविनाभाव सम्बन्ध है। यहाँ विश्व–द्रव्य की उत्पत्ति और प्रलय के सन्दर्भ में सृष्टि के विसदृश एंव सदृश परिणाम को लक्ष्य में रखकर प्रकृति व शक्ति की चार तत्त्वभूता क्रिया के अर्थ को

स्पष्ट किया है– वे (1) अभिभव, (2) आश्रय, (3) जनन और (4) संयोग स्वरूपा हैं। इससे ही सृष्टि के यावन्मात्र पदार्थ अव्यक्त से व्यक्त हो जाते हैं।

इससे आगे की कारिका में तीनों गुणों के मौलिक स्वरूप को स्पष्ट किया गया है– सत्त्वगुण लघु और प्रकाशक है, तमोगुण गुरुत्वधर्मा और आच्छादक, रजोगुण उत्तेजक, यह दोनों को ही शीघ्रता से सक्रिय बना देता है। सांख्य के तीनों गुण पदार्थों का मौलिक स्वरूप निम्न कारिका में भली–भाँती स्पष्ट हुआ है।

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।

गुरुवरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।।[6]

लघु यहाँ गुरु शब्द के विपरीत अर्थ को स्पष्ट करता है अर्थात्– प्रकाश में भार तो है, पर तम पदर्थ की तुलना में अल्प है, अतः वह अधिक क्रियाशील व वेगधर्मा है। प्रकाश में Mass है, इस वैज्ञानिक सत्य का पता सर्वप्रथम इस शती के प्रारम्भ में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने लगाया था। सांख्यशास्त्र इस सत्य का उद्घाटन अपने प्रारम्भिक काल से ही कर रहा है। प्रकाश की गति का लाघव भी इस लघु गुरुत्व के कारण ही सिद्ध होता है, जो अधिक गुरुता के कारण तमस्द्रव्य में सम्भव नहीं। प्रकाश में अन्य पदार्थों की तुलना में सर्वाधिक लघुता हैं रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण दोनों को ही सक्रिया बना देता है, इसलिए उसे उपष्टम्भक व उत्तेजक कहा गया है। तम पदार्थ परम गुरुत्वधर्मा है, इसलिए वह आच्छादक व आवरक है। तमस्तत्त्व प्रलय में परम संकुचित अवस्था में चला आता है, इसीलिए वह स्वयं ही अपनी द्रव्यराशि का आवरणभूत हो जाता है, पर इस अतिशय संकोचरूपा आवरणधर्मिता में वह लघु नहीं हो जाता, उसका गुरुत्वधर्म वहाँ यथावत् विद्यमान है। ये तीनों गुण परस्पर विरोधी होते हुए भी दीपवत् विराट् पुरुष के लिए विश्वरूप अर्थ को भली–भाँती प्रकाशित करते हैं। दीपक में तेल–बाती और वह्नि तीनों परस्पर विरुद्धधर्मा होते हुए भी एक दूसरे का सम्पूरक बन जाती है।

सांख्यशास्त्र के अनुसार शुक्लवर्णधर्मा प्रकाश सत्त्वगुण है, कृष्णवर्णधर्मा विदग्ध द्रव्य तमोगुण। विज्ञान का फोटोन और न्यूट्रोन पदार्थ उपर्युक्त सत्त्व और तम इन दोनों पदार्थों से अपना बहुत कुछ साम्य रखता है। तमोगुण की द्रव्यराशि का स्वरूप अचल और जड़ है। रजोगुण के प्रवर्तक वेग से संयुक्त होने पर वह तन्मात्र रूप से सक्रिय हो उठती है। रजोगुण ऊर्जाधर्मी सक्रियता का प्रवत्क

बलवेग है। प्रलयकाल में यह क्रमशः अपनी उत्तरोत्तर अवस्थाओं में निष्क्रियता की ओर बढ़ता हुआ–अन्त में बलमात्रक के रूप में अचल हो जाता है। वही सृष्टिकाल में ऊर्जा के रूप में सक्रिय होता हुआ सत्त्वगुण और तमोगुण को एकाकार कर देता है। इन गुणत्रय के सम्मिलित विक्षोभ से ही इस मनौभौतिक विश्व का विस्फोट होता है। इससे पूर्व की द्रव्यावस्था के दो स्तर और हैं– (1) महतत्त्व और (2) अहंकार। प्रकृति का ही महतत्त्व के रूप में प्रथम परिणाम है, इसका द्वितीय परिणाम अहंकार है, जो आगे चलकर इन्द्रिय, तन्मात्र और तज्जन्य पंचमहाभूतों के रूप में प्रकट होता है।

सचेतन पुरुष सत्ता के संयोग से जड़ प्रकृति में गुण–क्षोभ होता है, इसके फलस्वरूप विश्व की द्रव्यमयी प्रथम चेतन जाग्रत हो उठती है। फलतः प्रकृति की सुप्त एवं परम गुरुत्वधर्मा जड़ अवस्था भंग हो जाती है। इस अवस्था का नाम ही महतत्त्व है, जो तीनों गुणों की संक्षुब्ध अवस्था का प्रथम परिणाम है। आगे चलकर यही अहंकार के रूप में विकृत व परिणामर्धा हो उठती है। यह प्रकृति का द्वितीय विकसित स्तर है। इस विश्वचेतना का आवृत्त व बद्धस्वरूप कहा जा सकता है। महत्तत्त्व जहाँ प्रकृति का प्रथम परिणाम हैं, वहीं अहंकार विश्व की संरचना के सन्दर्भ में नियति प्रधान द्रव्य चेतना का द्वितीय विकास है। अहंकार तत्त्व में विश्व का नियतिरूप निर्धारण कार्य समाप्त होता है, भावी विश्व की संयोजना का समपूर्ण अन्तः संविधान यहाँ पूर्ण हो जाता है। प्रकृति का इससे पश्चाद्भावी विकास तो विश्व की कार्यस्वरूपा सिद्धि का बहिर्मुख इतिहास है। अहंकार तत्त्व के भीतर विद्यमान रजोगुण का बलमात्रक अपने प्रबल वेग द्वारा वहाँ अव्यक्तरूप से विद्यमान सत्त्वगुण और तमोगुण को पृथक् कर देता है। सत्त्वगुण सृष्टि का सचेतन प्रकाश तत्त्व है, विश्व के भावी सचेतन विकास को लक्ष्य में रखकर, उसके पूर्व विधायक स्वरूप को ग्यारह विभागों में विभक्त करके समझा गया है। ये अहंकार ही आगे चलकर पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ और ग्यारहवें मन के रूप में व्यक्त हो जाती है। यही सृष्टि की आधारभूता पूर्व नियति है, जिसके द्वारा हिरण्यगर्भ के तन्मात्र द्रव्य का स्वरूप अनुशासित होता है।

रजोगुण जब सत्त्वगुण और तमोगुण से संयुक्त होता है–तभी विश्व के आधिभौतिक और मनोभौतिक पदार्थों की उत्पत्ति होती है। तमोगुण से संयुक्त होने पर पंचमहाभूतों की प्रथम शक्ति–कणस्वरूपा तन्मात्र अवस्था उत्पन्न होती है, जिसे तन्मात्रा व भूत–तन्मात्रा कहते हैं। सत्त्वगुण से जब रजोगुण संयुक्त होता है– तब विश्व का कार्यवाहक इन्द्रियचैतन्य प्रकट होता है।

विस्फोट के साथ ही सर्वप्रथम शब्द तन्मात्रा का जन्म होता है– जिसके द्वारा आकाश तत्त्व अस्तित्व में आता है। सांख्यशास्त्र का विज्ञान, शब्द तन्मात्रा के विकास से विश्व के प्रथम भौतिक विकास को स्वीकार करता है, जो हिरण्यगर्भ के उद्भेद से उत्पन्न होती है। आधुनिक विज्ञान में इसके लिए बिग–बैंग शब्द का प्रयोग है, जो आदिअण्ड के विस्फोट से हुआ था। कालान्तर में तन्मात्राओं के परस्पर होने वाले परिणाम से ही पंचमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। प्रत्येक तत्त्वशक्ति का तन्मात्रक एक महाभूत जन्म लेता हुआ, नवीन तन्मात्रा के विकास से संयुक्त हो जाता है। इससे पुनः नये महाभूत की सृष्टि होती है।

प्रारम्भ में जड़ प्रकृति में समाहित अनन्त प्राणचेतना को अपनी जड़ धर्मिका से मुक्त करने के लिये प्रकृति विश्वरूप में बार–बार चेतना के आश्रय से परिणमन करती है। जड़ प्रकृति में विद्यमान प्राण सत्ता का नाम पुरुष है, पुर उस चेतना का प्राकृतिक आयाम व आच्छादन है, और उस पुररूप आयाम में अधिष्ठित चेतना पुरुष। सांख्यशास्त्र प्रकृति की इस पुररूप अनन्त द्रव्य आयामिकता के आधार पर ही पुरुष के बहुत्व के सिद्धान्त को स्वीकार करता है। प्रकृति के भिन्न–भिन्न पुररूप आयामों की प्रतिबद्धता से एक ही पुरुषरूप महाचेतना अनन्तपुररूपा प्रकृति की आयामधर्मा हो उठी है। समष्टिपुरूष से जब समष्टि प्रकृति का संयोग होता है, तब वही इन अनन्त पुरों के आयाम में अपनी संस्कारधारा के अनुसार व्यष्टिभूत हो जाता है। पुनः कालान्तर में वह अक्षर पुरुष में विलीन होने के लिये प्रकृति की इस विश्वरूप सन्दोलन–क्रिया के माध्यम से मुक्त होने की स्थितियों तक चला आता है। फलतः प्रकृति की पुरसंक्रान्त अनन्त इकाइयाँ एक के प्श्चात् एक भंग होती चली जाती है। पुरूष स्वतः इस प्रकृति की पुररूप आयाम के भंग हो जाने पर स्वयं मुक्त हो जाता है। पुरुष में नहीं बदलता– वह कूटस्थ है, अपरिणामी है। प्रकृति का पुररूप आयाम ही परिणाम क्रम में बदलता हुआ, अन्त में महाशक्ति की महाचेतना में बदल जाता है।

निष्कर्षः–

प्रलयकाल में तीनों गुण समत्व को प्राप्त होते हुए, प्रकृति को एक स्थिर–संतुलन तक ले आते हैं। गुणक्षोभ के समय प्राणस्वरूप जैवायतन प्रकृति के साथ एकाकार होता हुआ सर्वप्रथम महतत्त्व के रूप में प्रकट होता है। महत्तत्त्व उसकी प्रयोजनवती वासनास्वरूपा महद् इच्छा है, जिसमें अनन्त जीवों की संस्कारधर्मिता महत् चेतना के रूप में जागृत हो उठती है। वह महत्तत्त्व में तमस् द्रव्य के साथ एकाकार है, उससे पृथक् नहीं। वासनाओं के प्रयोजनप्रत्यय की सामूहिकता उसे अहंकार तत्त्व में

बदल देती है। अपने इस द्वितीय परिणाम में पहुँच कर सामूहिक चेतना इतनी निविड और घन हो उठती है– वह स्वयं ही भोक्ता और भोग्य दो भोगों में विभक्त हो जाती, इसे यों भी कहाा जा सकता है– प्राणमय तत्त्व ही दो भागों में विभक्त हो जाता है– 'सत्त्वमात्रात्मिकां तनुम्' और 'तमोमात्रात्मिकां तनुम्'। इनकी मात्रा से ही भिन्न–भिन्न प्रकार के भूतद्रव्यों की सृष्टि होती है– 'उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जगिरे।[7] सत्त्वगुण से इन्द्रिय–चैतन्य और तमस् से भूत–द्रव्य का निर्माण होता है। रजोगुण का बलमात्रक नवधा या दशधा होकर सृष्टि के विकास को आगे बढ़ाता है।

संन्दर्भ सूचीः

[1]मूले मूलाभावाद्मूलं मूलम्। सा0 सू0, 1/67।
[2]यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तदुविजिज्ञास्य। तद् ब्रह्मेति। तैत्तिरीयोपनिषद् 3/1।
[3]अस्ति भाति प्रियं रूपं नामचेत्यंशप्रचकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्।। दृग्दृश्यविवके 20।
[4]यस्मात् क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्य गर्भेऽहंकारोऽभूत् खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च।
ब्रह्माण्डं यज्ज्ठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरंजेर्विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत् तत्त्वमाद्यम्।। सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय, भुवनकोश–आचार्य भास्कर– 2/1।
[5] सांख्यकारिका 12
[6] सांख्यकारिका 13
[7] विष्णुपुराण 1/5/56।